जनवाचन आंदोलन

बाल पुस्तकमाला

पुणे के बालभवन में पिछले 15 साल से बच्चों के बीच काम करने के सकारात्मक अनुभव का ब्यौरा। बच्चों के साथ की गई अनेकों गतिविधियों का वर्णन। खेलना और हम उम्र बच्चों की संगति, बच्चों के लिए क्यों आवश्यक है? किस प्रकार गली-मुहल्लों में बच्चों के खेलने की व्यवस्था की जा सकती है? शिक्षा और बच्चों में रुचि रखने वाले हरेक व्यक्ति के लिए एक अनिवार्य पुस्तक।

भारत ज्ञान विज्ञान समिति

मूल्य: 12 रुपए B - 45 Price: 12 Rupees

खुशहाल बच्चे

शोभा भागवत

इस किताब का प्रकाशन भारत ज्ञान विज्ञान समिति ने देश भर में चल रहे साक्षरता अभियानों में उपयोग के लिए किया गया है। जनवाचन आंदोलन के तहत प्रकाशित इन किताबों का उद्देश्य गाँव के लोगों और बच्चों में पढ़ने-लिखने की रुचि पैदा करना है।

खुशहाल बच्चे : शोभा भागवत
(निदेशक गरवारे बाल भवन, सारस बाग, पुणे)
505, शनिवार पेठ, पुणे- 411030
अनुवादः विमला प्रभाकर पंधे

जनवाचन बाल पुस्तकमाला के तहत
भारत ज्ञान विज्ञान समिति द्वारा प्रकाशित

© साभार : 'साप्ताहिक सकाल'
(दिवाली विशेषांक 1997)

रेखांकनः ऐलिनेयर वॉटस
ग्राफिक्स : अभय कुमार झा

प्रकाशन वर्षः 2000, 2002, 2006

मूल्यः 12 रुपए

Published by Bharat Gyan Vigyan Samithi
Basement of Y.W.A. Hostel No. II, G-Block
Saket , New Delhi - 110017
Phone : 011 - 6569943
Fax : 91 - 011 - 6569773
email: bgvs@vsnl.net

खुशहाल बच्चे

शोभा भागवत

खुशहाल बच्चे

बारह साल पहले जब पूना में बालभवन शुरू हुआ तो एक बच्चे की मां मुझसे मिलने आई और बोली, ''शोभाताई, मैं चाहती हूं कि मेरा बच्चा खूब आगे बढ़े, खूब उन्नति करे। आप ही बताएं कि मैं क्या करूं? मैं उसके लिए कुछ भी करने को तैयार हूं।'' आज भी मुझसे कोई ऐसा सवाल पूछता है तो उसका जवाब मुझे समझ में नहीं आता है। अपने बच्चों को लेकर माता-पिता के दिल में एक तड़प होती है।

इस तिलमिलाहट को अगर एक सही दिशा मिले तो यह एक अच्छा काम होगा। असल में, इन्हीं कुछ बातों के कारण ही बालभवन शुरू हुआ। जो आनंद घरों में, स्कूलों में बच्चों को नहीं मिल पाता है उस खुशी को दे पाना ही बालभवन का उद्देश्य था। हमारा मानना था, कि जब बच्चे खुश होंगे तभी उनका सही विकास होगा।

स्कूल छूटने के बाद, शाम को ही बच्चे बालभवन में आते हैं। ज़्यादातर बच्चे 3 से 12 वर्ष की आयु के होते हैं। आयु के आधार पर बच्चों को अलग-अलग समूहों में बांटा जाता है। हरेक समूह की एक संचालिका होती है जिसे बच्चे ताई कहते हैं। हरेक ग्रुप की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए ही उसके लिए कोई कार्यक्रम तय किया जाता है। हरेक समूह में केवल 15 से 20 बच्चे ही होते हैं। इससे उन पर व्यक्तिगत ध्यान दिया जा सकता है। बच्चे रोज़ व्यायाम, खेल, चित्रकला, हस्तकला, कहानियों, गानों, नृत्य और अभिनय जैसे कार्यक्रमों में भाग लेते हैं। शनिवार और रविवार वाले दिन अलग होते हैं। इन दिनों पिकनिक, पक्षी-निरीक्षण, ट्रेकिंग, कारखानों का दौरा, प्रतियोगिताएं और विज्ञान के प्रयोग आदि होते हैं।

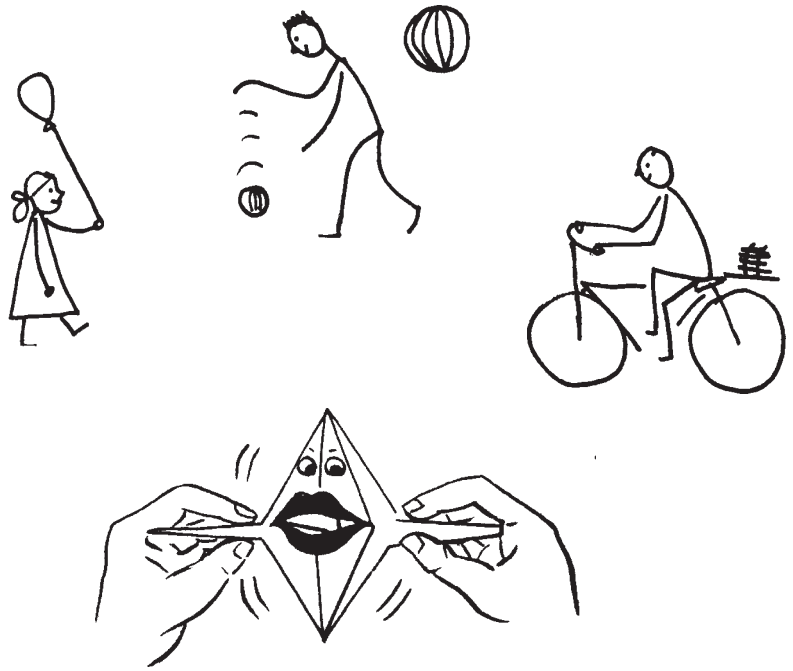

लेफ्ट! रॉइट! लेफ्ट!

बालभवन में आने के बाद बच्चे 15-20 मिनट व्यायाम करते हैं। शुरू में वे साधारण पी.टी. वाली कवायदें करते थे। पर बाद में उसमें योगासन भी जुड़ गया। अब तो जूडो, कराटे, जिम्नास्टिक और अन्य खेल भी व्यायाम में शामिल हो गए हैं। कसरत करते समय बच्चों को आनंद का अनुभव होता है। हमारा शरीर क्या-क्या कर सकता है और कितनी अलग-अलग तरह से मुड़ सकता है, यह बात समझ में आती है। बच्चे किसी बात को आंख मूंद कर स्वीकार न करें, इस बात का बालभवन में ध्यान रखा जाता है। सच्ची शिक्षा तभी होगी जब बच्चे उसमें अपना कुछ नया जोड़ेंगे, कुछ नया खोजेंगे। व्यायाम जैसी नीरस गतिविधि में भी हमें इसकी झलक मिलती है। बच्चों ने व्यायाम के अनेकों नए तरीके ढूंढ निकाले। व्यायाम के समय एक बालक ने मुझ से हंसते हुए कहा, ''चलिए ताई, हम एक मज़ेदार कसरत करते हैं।'' मैंने पूछा, ''कैसे?'' तब उसने कहा ''हमारा व्यायाम ऐसा हो जिसे देखकर औरों को हंसी आए।'' उसके बताए अनुसार हमने हंसाने वाले व्यायाम किए। यह उस बच्चे के सोच पर आधारित था। व्यायाम के समय हम अक्सर ज़ोर-ज़ोर से एक, दो, तीन ...की गिनती गिनते हैं और अपने हाथों और पैरों को सैनिकों की तरह आगे-पीछे मारते हैं। यह व्यायाम का कितना उबाऊ और हिंसक तरीका है। क्या इसमें बच्चों को मज़ा आएगा? इस नीरस सैनिक कार्यवाही से बच्चे ऊबेंगे ही। एक ताई ने सुझाव दिया ''हम क्यों न सा, रे, गा म .... की लय पर व्यायाम करें?''

संगीत के मधुर सुर कानों को अच्छे लगेंगे। संगीत, लेफ्ट- रॉइट जैसे कानों पर चोट तो

नहीं करेगा! संगीत के सुरों को आप गुस्से में तो बोल नहीं पाएंगे। अच्छी बात तो यह है कि उन्हें दोनों - अंग्रेज़ी और मराठी भाषी बच्चे समझ पाएंगे। इसके बाद ताई ने एक, दो तीन की जगह वार और महीनों के नामों के साथ व्यायाम कराया। इसके पीछे भी उद्देश्य था कि बच्चों को इसमें आनंद आए और खेल-खेल में शिक्षा भी हो।

छोटे बच्चों का बहुत देर तक व्यायाम में मन नहीं लगता है। इसे ध्यान में रखते हुए सुजाता ताई ने एक प्रयोग किया। इसमें सभी को बड़ा मज़ा आया। इसमें गिनती की जगह बच्चों के नाम बोलने थे, जैसे - सुरभि, वैभव, शीतल, अनिल आदि के नाम बोलते-बोलते व्यायाम करना था। इस तरीके में बच्चे अपना नाम आने का इंतज़ार करते हैं ओर उनका मन कुछ रम जाता है। संगीत की लय पर व्यायाम करने का मज़ा ही कुछ और है। उसमें खुलापान होता है, गति होती है, लय होती है। इस प्रकार खुशी-खुशी में बच्चों की खूब कसरत भी हो जाती है। घर जाकर छोटे बच्चे अपने माता-पिता, दादा-दादी से भी उसी प्रकार के व्यायाम करवाते हैं जो उन्होंने बालभवन में सीखे थे। अगर बच्चों में व्यायाम में रुचि पैदा करनी है तो उसमें ज़ोर-ज़बरदस्ती, सख्ती, अनुशासन के नाम पर सज़ा, हिंसा जैसे अस्त्र किसी काम के नहीं हैं।

अगल-अगल खेल

हमारे अलग-अलग प्रांतों में अनेकों विविध खेल हैं। बच्चो को उनका अधिक से अधिक अनुभव मिले हम इस बात का सतत प्रयास करते रहते हैं। ***संगीत-कुर्सी*** (म्यूज़िकल चेयर्स) और रीले-रेस तो बच्चे झटपट सीख जाते हैं। ***क्वीन-ऑफ-शीबा*** में कोई वस्तु छिपा दी जाती है और बच्चों की दो टीमों को उन्हें जासूसों की तरह ढूंढना होता है। जो टीम पहले वस्तु को खोज निकालती है, वही जीतती है। इस प्रकार के खेलों में बच्चे आपसी सहयोग सीखते हैं। वे हमेशा चौकन्ने और सर्तक भी रहते हैं। कुछ खेल निर्णय शक्ति बढ़ाने के लिए, तो कुछ याददाश्त बढ़ाने के लिए होते हैं। ***राम-राम-भैया*** जैसे खेल में तेज़ी से दौड़ना पड़ता है और ***शेर-बकरी*** वाले खेल में सदैव सावधान रहना पड़ता है। कुछ खेलों में स्मरण-शक्ति की परीक्षा होती है और कुछ में अभिनय का कौशल काम आता है। विभिन्न खेलों से बच्चों को अलग-अलग अनुभव मिलते हैं। शारीरिक और मानसिक दोनों क्षमताओं को बढ़ाने में खेल उपयोगी हैं। बच्चे सब कुछ हंसते-खेलते, खुशी-खुशी सीखते हैं। यही इन खेलों की विशेषता है। किस आयु में बच्चा कौन सा खेल खेले, इस प्रश्न का उत्तर बच्चों को खेल के मैदान में ही मिलता है। कभी-कभी यह ताई की अपनी कुशलता पर भी निर्भर करता है।

बड़ी उम्र के बच्चों के साथ हम ***प्रश्न-उत्तर*** के खेल खेलते हैं। इनमें कुछ सवाल अखबारों पर तो कुछ सामान्य ज्ञान पर आधारित होते हैं। बालभवन में अनेक तरह के पेड़ हैं, उन्हें पहचानना, नए पेड़ कहां लगे हैं और उनके नाम क्या हैं, यह

जानना। पक्षियों के नाम जानना और उनके घोंसले ढूंढना, तितलियों के अंडे और उनकी इल्लियों को खोजना। कहां पर नए पौधे अपने आप उग आए हैं, विभिन्न मौसमी कीड़े-मकौड़ों की पहचान, जून की बारिश के बाद उगी वनस्पतियों के पत्तों का संग्रह और उपयोग - इस प्रकार बालभवन में परिसर अध्ययन का काम चलता है। कल्पनाई और वासंतीताई की इस अध्ययन में विशेष रुचि है। वो बच्चों को कभी पूना यूनिवर्सिटी, कभी पांचगांव पार्वती, कभी एम्प्रेस गार्डन और कभी सारस बाग ले जाती हैं। वहां पर बच्चे पेड़ों के पत्तों को छूते और देखते हैं कि वे कितने मुलायम हैं। बच्चे पेड़ के तने पर कागज़ रखकर उसे पेंसिल से रगड़ते हैं। इससे कागज़ पर जो नमूना बनता है उसे हम पेड़ के हस्ताक्षर ही कह सकते हैं। बाघनखी की बेल किस प्रकार ऊपर चढ़ती है, बच्चे इसका निरीक्षण करते हैं। बच्चे नीली-गुलमोहर (जैकरेंडा) के फूलों को निहारते हैं। ये फूल इतनी तादाद में पेड़ के नीचे बिखरे होते हैं कि उनस खूबसूरत नीला गलीचा जैसा बन जाता है। बच्चे गुलमोहर के पेड़ के नीचे लेट जाते हैं और फिर टकटकी लगाए आकाश पटल पर सज़ी हरी और लाल नक्काशी का आनंद लेते हैं। वो पक्षियों का चहचहाना और भौरों का गुंजन सुनते हैं। कभी बच्चे फूलों के रस को चखते हैं, तो कभी इमली के पत्ते खाते हैं। इस प्रकार हरसिंगार, रात की रानी, मोगरे आदि की सुगंधों से बच्चों की जान-पहचान हो जाती है। अपनी पांचों इंद्रियों से बच्चे प्रकृति को ग्रहण करते हैं। शायद इसी कारण बच्चों का प्रकृति के साथ संबंध शाब्दिक न रह कर थोड़ा भावनात्मक हो जाता है।

प्रकृति निरीक्षण

किरण पुरंदरे तो इस मामले में हमारे गुरू हैं। उनके साथ पक्षी-निरीक्षण पर जाना और उनकी बातें सुनना एक बेहद सुखद अनुभव है। भीमाशंकर में एक युवक हमें पक्षियों के बारे में जानकारी दे रहा था। टिटहरी की आवाज़ को सुनकर वो कहने लगा कि चिड़िया ***ही विल बीट यू*** कह रही है, जबकि हमें लगा कि वो ***शी विल बीट यू*** कह रही थी। केवल पेड़ों और पक्षियों के नाम मालूम होना और उन्हें पहचान पाना तो प्रकृति निरीक्षण का बौद्धिक पक्ष हो गया। परंतु असली बात तो बच्चों का प्रकृति की गोद में खेलना और उसमें रम जाना है। बच्चे कनेर के पीले फूलों को अपनी उंगलियों पर चढ़ा लेते हैं और फिर कहते हैं, ''देखो, हमारी उंगलियां फूल बन गई हैं।''

बच्चे गुलमोहर के फूल की पंखुड़ियों को खोलकर उन्हें अपने नाखूनों पर लगा लेते हैं। फिर वे सबको दिखाते हैं कि उनके नाखून लाल हो गए हैं। वो गुलमोहर की फली को तलवार जैसे नचा कर दिखाते हैं। लड़कियां फूलों के गजरों को बालों की चोटी से लटका कर बरगद के पेड़ की लटकती हुई जड़ों से झूला झूलती हैं। प्रकृति के साथ खेलते-खेलते ही बच्चों में उसके प्रति प्रेम निर्माण हो जाता है। एम्प्रेस गार्डन के साफ पानी के नाले में बच्चों को खेलने में बड़ा मज़ा आता है। ऐसा अनुभव भला उन्हें एक बड़े शहर में भला कहां मिलेगा?

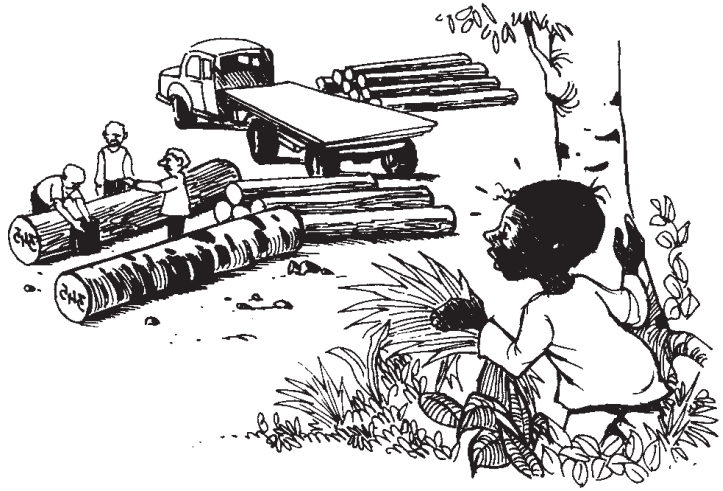

पेड़ तोड़ो नहीं, पेड़ लगाओ जैसी बातें अगर छोटे बच्चों को बताई जाएं तो वो बाल-मन में पक्की तरह बैठ जाती हैं। एक बार हम बच्चों को लेकर विसापुर गए। वहां पर बच्चों ने एक आदमी को कुल्हाड़ी से पेड़ काटते हुए देखा। उसे देखते ही तुरंत वहां दो-तीन बच्चे पहुंच गए और उस आदमी को धमकाने लगे, ''पेड़ के नीचे उतरो। पेड़ काटना बंद करो। ''एक बाद पिकनिक जाते समय एक तीन साल के लड़के को कहीं से पेड़ की एक टूटी टहनी पड़ी मिल गई। वो टहनी को ज़मीन में बोने की ज़िद करने लगा। उसने हमारी एक बात न सुनी। उसने खुद एक छोटा गड्ढा बनाया और फिर उसमें टहनी को बो दिया। तब जाकर उसे तसल्ली मिली। हम बच्चों को जो बातें बताते हैं वो उनके मन की गहराई में बस जाती हैं। वो उन्हें जल्दी नहीं भूलते हैं। यह बात मुझे तब मालूम पड़ी जब गिरिजा पागे ने बारहवीं कक्षा पास कर लेने के बाद ऐग्रीकल्चर कॉलेज में प्रवेश लिया। उसने कहा, ''जब मैं छोटी थी तब आप मुझे एक बार खेतों का भ्रमण कराने ले गईं थीं। आपने कहा था कि खेती करना अच्छा होता है और किसान एक बहुत महत्वपूर्ण काम करता है। आपने बाद में सब बच्चों से पूछा था कि उनमें से कौन किसान बनना चाहेगा। आपको शायद अब याद न हो पर बहुत से बच्चों ने ***हां*** कहा था, परंतु मैंने तब ***न*** कहा था।'' वो बच्ची, बचपन की उस बात को अभी तक नहीं भूली थी, यह जानकर मुझे खुशी हुई।

पिकनिक द्वारा शिक्षण

महीने में हम दो बार, पिकनिक के लिए ज़रूर जाते हैं। पुणे और उसके आसपास अनेकों बगीचे, पहाड़-पहाड़ियां, मंदिर, सामाजिक संस्थाएं, ऐतिहासिक स्थल, पक्षी-निरीक्षण के स्थान, अभयारण्य, चिड़ियाघर और म्यूज़ियम आदि हैं। पिकनिक में बच्चों को बड़ा मज़ा आता है। पिकनिक की खुशी उनकी आंखों से झलकती है। वे एकदम मुक्त होकर, बेहिचक होकर, सवाल पूछते हैं। आगाखान पैलेस की सैर को ही लें। वहां पर गांधीजी की प्रदर्शनी में अनेकों मूर्तियां, प्रतिमाएं और तस्वीरे हैं। गांधीजी के अनेकों चित्र देखते-देखते कुछ देर में गांधीजी की बिना-बाल-के-सिर वाली छवि पूरी तरह से मन में बस जाती है। प्रदर्शनी के पहले कमरे में गांधीजी की चप्पलें, चश्मा, चरखा, धोती आदि चीज़ें बच्चे देखते हैं। बाहर दरवाज़े के पास एक गोल पत्थर रखा था। उसे एक चार साल का बच्चा टकटकी लगाए देखता रहा और फिर उसने पूछा, ''क्या यह गांधीजी का सिर है?''

एक बार हम कात्रज स्थित सर्पोद्यान देखने गए। वहां खूब खेलना-कूदना हुआ। फिर सर्पोद्यान देखने के बाद हम लोग खाने के लिए बैठे। केक खाते समय आठ वर्ष का अभिषेक मेरा हाथ पकड़ कर खींचने लगा। ''मुझे घर जाना है, अभी घर जाना है,,'' वो कहने लगा। मैंने कहा,''पहले केक तो खा लो''। तो उसने कहा, ''मुझे केक नहीं चाहिए''। जब वो रोने

लगा तो मैंने उसे कुछ दूर ले जाकर पूछा, ''टट्टी जाना है क्या?'' उसने जब हां कहा तो मैंने उससे कहा, ''झाड़ी के पीछे जाकर कर लो। अपनी पानी की बोतल भी साथ लेते जाना।'' तब उसने कहा, ''मुझे अपने जूते निकालना नहीं आते और न ही पैंट खोलना आती है। और फिर मैं अपने आपको साफ कैसे करूंगा?'' मैंने कहा, ''मैं तुम्हारी पूरी मदद करूंगी।'' फिर वो झाड़ी के पीछे टट्टी करने के लिए गया। वापिस आने पर उसने अपनी शंका प्रकट की, ''हम से जब लोग पूछेंगे कि हम कहां गए थे तो आप क्या उत्तर देंगी?'' मैंने कहा, '' मैं सबको बताऊंगा कि हम दोनों झाड़ियों में तितलियां देखने गए थे।'' यह सुनकर उसका तनाव एकदम दूर हो गया। उसने मुझसे कहा, ''आप कहें कि हम दोनों टेलर-बर्ड यानि दर्जिन चिड़िया देखने गए थे।'' टेलर-बर्ड में अधिक ग्लैमर है शायद उसे ऐसा लग रहा था। ''बालभवन वापिस जाकर आप मेरी मां को भी यह नहीं बताना कि मैंने वहां टट्टी की थी।'' मैंने कहा, ''मैं तुम्हारी मां को यह रहस्य कभी नहीं बताऊंगी।'' मुझे बड़ा अचरज हुआ कि आठ साल के बच्चे को जूता खोलना, पैंट बांधना भी नहीं आता है। आठ दिन बाद मैंने उसकी मां को एक दिन मिलने के लिए बुलाया। उन्होंने बताया कि लड़के के पिता शराबी हैं। उन पर इतना बोझ है कि वो अभिषेक का सही ध्यान नहीं रख पाती हैं और इसी वजह से उनका लड़का इतना ज़िद्दी बन गया है। इसके बाद हम लोग भी अभिषेक का ध्यान रखने लगे। परंतु

इस प्रकर की समस्याएं आसानी से नहीं सुलझती हैं। फिर भी प्रयास करने से थोड़ा फायदा अवश्य होता है। बचपन में कोशिश करने से हम बच्चों को बड़ी समस्याओं से बचा सकते हैं।

कारखानों में जाकर, वहां का काम देखना भी बालभवन द्वारा आयोजित पिकनिकों की एक खासियत है। दैनिक जीवन के प्रयोग में आने वाली चीज़ों का उत्पादन कैसे होता है? चीज़ें कैसे बनती हैं? इस बात को दिखाना हमारा प्रमुख उद्देश्य होता है। बड़े होने के बाद अपनी आजीविका के लिए बच्चे कौन सा रोज़गार चुनना चाहेंगे, इस बात की झलक भी उन्हें इसमें मिलती है। राजा बहादुर क्लाथ मिल में बच्चे कपास से कपड़ा तैयार होते हुए देखते हैं। साठे बिस्कुट के कारखाने में वे आटे से बिस्कुट तैयार होने तक की पूरी प्रक्रिया देखते हैं। पूना बाटलिंग प्लांन में बच्चे पानी के शुद्धिकरण से लेकर, कोका-कोला को बोतलों में भरते हुए देखते हैं। चाकण में मूमफली के तेल की फैक्ट्री और मशरूम की खेती देखते हैं। वे बर्तनों के कारखाने, चीनी मिल और चॉकलेट की फैक्ट्री भी देखने के लिए जाते हैं। चीनी का कारखाना देखते समय एक छोटी लड़की ने पूछा, ''यहां तो बहुत चींटियां होंगी?'' बालभवन में आने वाले बच्चों के पालक भी उन्हें अपने कारखानों में अपने के लिए आमंत्रित करते हैं। एक बार एक पालक ने हमें टूटी-फ्रूटी का कारखाना देखने के लिए बुलाया। टूटी-फ्रूटी कच्चे पपीते से बनती है। शुरू में पपीतों को एक बड़ी हौद में, नमक के घोल में, डुबो कर रखा जाता है। जब हम वहां पहुंचे तो वहां की सड़ी बदबू से हम परेशान हो गए। नाक पर रुमाल रखकर हम किसी तरह अंदर गए। वहां देखा कि पपीते के टुकड़ों को रंगीन चाशनी में से निकाल कर सुखाया जा रहा था। यह पूछा जाने पर कि उन्हें कारखाना कैसा लगा, बच्चों ने कहा कि टूटी-फ्रूटी की बदबू ने उनकी नाक में दम कर दिया और अब वो इसे ज़िंदगी में कभी भी नहीं खाएंगे!

जब बच्चे तेल मिल देखने गए तो वहां उन्हें मूमफली के ढेर पर खेलने की अनुमति मिल गई। वे घंटों मूमफली के ढेर पर से फिसलते रहे। उनकी खुशी का ठिकाना न रहा! पूना बाटलिंग प्लांन में रिवाज़ है कि वहां

मेहमान दर्शकों को कोल्ड-ड्रिंक पीने को मिलती है। बच्चों को जब कंपनी की इस उदारता का पता चला तो कारखाना देखने से उनका मन एकदम उचट गया। अब कुछ देखने की बज़ाए उनका मन केवल कोल्ड-ड्रिंक पीने में था। वे बार-बार अपनी ताई से पूछते, ''हमें कोल्ड-ड्रिंक पीने को कब मिलेगी?''

जब बच्चे यवत में स्थित चोरडिया कंपनी का कारखाना देखने गए तो वहां उनका बहुत लाड़-प्यार हुआ। बच्चों को बहुत अच्छा खाना खिलाया गया। उरली-कांचन में अंगूरों के खेतों के बीच बच्चों को टोकरी भर कर अंगूर खाने को मिले। जब बच्चों से अंगूर तोड़ने के लिए मना किया गया तो एक भी बच्चे ने अंगूर नहीं तोड़ा। बगीचे के माली ने भी बच्चों की बहुत तारीफ की।

एक बार टिफिन खाते समय दो ताई, समोसे कैसे बनते हैं इस बात पर चर्चा करने लगीं। बच्चे उनकी बातचीत को बड़े ध्यान से सुनते रहे। हमें पूरा विश्वास है कि घर आकर बच्चों ने समोसे बनाने की विधि अपनी मां को अवश्य बताई होगी। खाना खाने के बाद उस स्थान की सफाई के बारे में अब हमें बच्चों से कुछ नहीं कहना पड़ता है। यह अब बच्चों की आदत बन गई है। एक बार हम सोलापुर के पास अंकोली गांव में अरुण देशपांडे की खेती देखने गए। वहां बच्चों को अरुण से इतना लगाव हो गया कि वे चाचा, चाचा कह कर उनके पीछे ही पड़ गए। सुमंगला ने भी बच्चों के खाने-पीने का बहुत ध्यान रखा। अरुण ने कृषि संबंधी अपने प्रयोगों को भी दिखाया। उसने सस्ती कीमत में गुम्बद (जियोडेसिक डोम) बनाने की विधि भी बताई। फिर बच्चों को बैलगाड़ी में बिठाकर सारे गांव की सैर कराई। इसमें उन्हें बड़ा आनंद आया। बच्चों ने आतिशी-शीशे यानी हैंड-लैंस की मदद से सूर्य की किरणों को एक बिंदु पर केंद्रित किया और फिर उससे एक लकड़ी के

पुराने तख्ते पर बालभवन का नाम लिख डाला। बच्चे अंकोली में इतना रम गए कि वे पूना वापस आने को भी तैयार न थे। लौटने के बाद बच्चों ने, अपने अनुभवों को चित्रों में उतारा। उन सुंदर चित्रों को देखकर हमें बड़ा अचंभा हुआ। बच्चों ने वैसे ही चित्र बनाकर अरुण चाचा और सुमंगला ताई को भेजे। अंकोली में एक रात बच्चों ने एक सांस्कृतिक कार्यक्रम पेश किया। जिसे देखकर हम सब लोग लोट-पोट हो गए। अरुण ने हमसे चलते-चलते कहा, ''आप लोग यहां बार-बार आएं। इससे हमारी उम्र में कुछ और साल जुड़ जाएंगे।''

विलास मनोहर, हेमलकसा (बाबा आमटे का कर्मस्थल) घूमकर आया था। कल्पना ताई ने विलास की यात्रा का वर्णन सबको सुनाया। बच्चे उसे सुनकर इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने वहां खुद जाने का निश्चय किया। उन्होंने कहा कि उन्हें प्रकाश आमटे से मिलना है और वहां जाकर बाघ, सिंह, बंदर और अन्य जानवर देखने हैं। कल्पना, जया, शशि ताई बच्चों को हेमलकसा लेकर गईं। बच्चों ने किताब में प्रकाश आमटे (बाबा आमटे के पुत्र) को नेकर और बनियान पहने देखा था। शायद हेमलकसा के जंगली-जीव अब इंसानों को इन्हीं कपड़ों में देखने के अभ्यस्त हो गए होंगे। शायद इसी सोच के कारण बच्चों ने भी अपनी-अपनी अटैची में नेकर और बनियान रख लिए। इस यात्रा की तैयारी और आयोजन पर ताईयों ने बड़ी मेहनत की। बच्चे भी इस सुंदर अनुभव को अपने जीवन में कभी भी नहीं भूलेंगे।

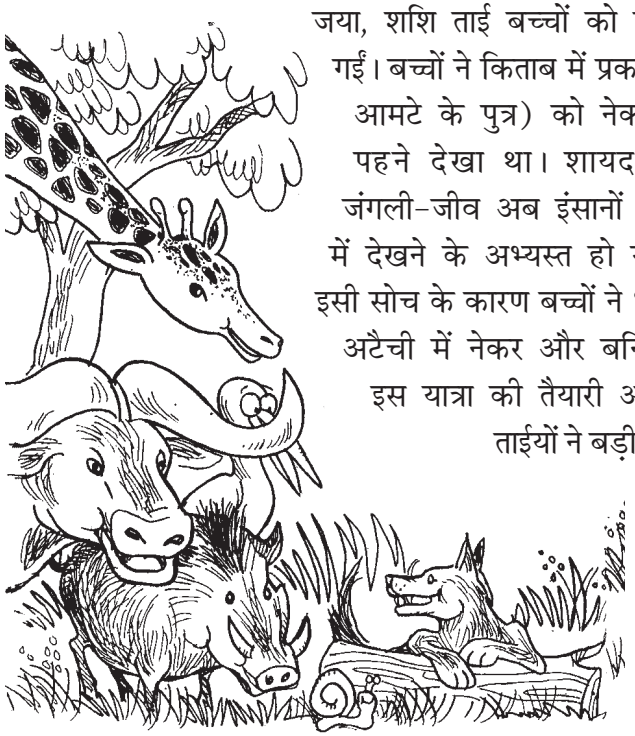

चित्रकला और हस्तकला

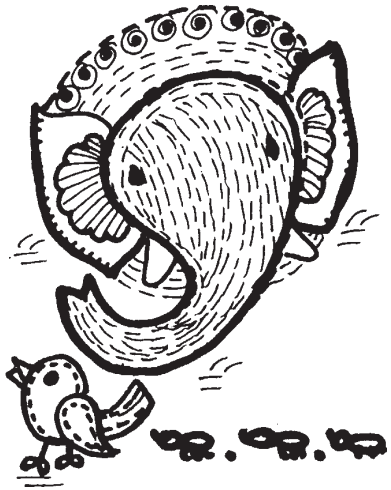

बालभवन में पूरे साल ही बच्चे चित्रकला और हस्तकला करते रहते हैं। बच्चे तीज-त्यौहारों के समय विशेष गतिविधियां करते हैं। गणेश उत्सव के समय हरेक बच्चा अपने हाथों से गणेश जी की एक मूर्ति बनाता है। बच्चे द्वारा बनाई इन प्रतिमाओं का अपना ही आनंद होता है। हरेक गणेश की अपनी एक अलग छाप होती है। कोई गणेश झुका होता है तो दूसरा उकड़ू बना बैठा होता है। एक की तिरछी नज़र होती है तो दूसरे के चेहरे पर गुस्सा और निराशा होती है। गणेश जी को कैसे बनाना है? यह प्रश्न कम-से-कम बच्चों को तो परेशान नहीं करता है। कुछ बच्चे मिट्टी की एक गोल गेंद बनाते हैं और उसमें एक सूंड चिपका देते हैं— बस बन गए गणेश जी! अपनी उम्र और कुशलता के अनुसार बच्चे उस मूर्ति में नाक, कान, हाथ-पैर, मुकुट, लड्डू आदि जोड़ते जाते हैं। एक बच्चे के गणेश ने, दाएं हाथ की उंगली से अपना मुंह बंद कर रखा था। उसे देखकर बड़ी हंसी आई। परंतु उसके साथ-साथ बालक की मनस्थिति जानने की उत्सुकता भी बढ़ी।

एक लड़की ने बैठे हुए गणेश की प्रतिमा बनाने की बड़ी कोशिश की परंतु वो इसमें सफल नहीं हुई। अंत में गुस्से में आकर उसने एक थप्पड़ मार कर उसे चपटा कर दिया और कहा, ''देखो मेरा गणपति शव-आसन कर रहा है।'' एक बच्चे को गणेश की मूर्ति में चार हाथ चिपकाने में बहुत मुश्किल हो रही थी। अंत में उसने मूर्ति के पास ज़मीन पर ही चार हाथ चिपका दिए और हरेक पर एक-एक लड्डू रख दिया। उसे इसमें कोई भी गलती महसूस नहीं हुई। उसने बड़ी ही सरलता से अपनी समस्या का हल

ढूंढ निकाला। एक बच्चे ने टेडी-बेयर तो दूसरे में मिकी-माउस जैसी गणेश जी की मूर्तियां बनाईं। उन्हें देखकर हमें कुछ आश्चर्य अवश्य हुआ।

दही-हंडी के पर्व पर बच्चे एक मटकी को रंग देते हैं। बच्चों की ऊंचाई के मुताबिक मटकी को टांगा जाता है और इस बात का ख्याल रखा जाता है कि हरेक बच्चे को मटकी फोड़ने का मौका ज़रूर मिले। हां, अगर कोई बच्चा मटकी फोड़े नहीं, तो कम से कम, उस पर वार तो अवश्य करे। ताई और बच्चे सभी मटकी को फोड़ने में बहुत आनंद लेते हैं। वे बारिश में भीग कर कीचड़ में लथपथ होकर, एक-दूसरे के कंधों पर खड़े होकर मटकी फोड़ने का मज़ा लेते हैं। सभी बच्चों अपने घरों से एक-एक मुट्ठी चिवड़ा लाते हैं। इसे दही में मिलाकर सब लोग आपस में मिल-बांट कर खाते हैं। एक अंग्रेजी माध्यम में पढ़ने वाले बच्चे ने ताई से पूछा, ''ताई आप दही तो लाई हैं, परंतु अंडे कहां हैं?'' उसने दही-हंडी को दही-अंडी समझ लिया था।

रक्षाबंधन के त्यौहार से तो सभी परिचित होते हैं, परंतु एक लड़के को बालभवन में पहली बार ही उसका असली अनुभव हुआ। उस लड़के की कोई बहन नहीं थी। उसका भाई दूसरे समूह में था। जब उसके समूह के लड़कियों ने उसे राखी बांधी तो उसने उसे बेहद संभाल कर रखा। नहाते समय भी उसने राखी को गीला नहीं होने दिया! उसने न जाने कितने दिनों तक उस राखी को संजो कर रखा। यह बातें उसकी मां ने बाद में आकर बताईं। दीपावली पर दियों को रंगना, रंगोली बनाना, किले बनाना, ग्रीटिंग-कार्डस बनाना और आकाश-कंडील बनाने का सभी काम बच्चे खुद ही करते हैं। किले की झांकी बनाते हुए बच्चों की लगन बस देखते ही बनती है। वे बड़े-बड़े पत्थर, बोरियां और डिब्बे एकत्र करते हैं। वे किले में गुफाएं और तालाब बनाते हैं और अंदर क्यारियों में अनाज के बीज बोते हैं। एक बच्चे ने कहा, ''मेरे किले में जाने का मार्ग वन-वे है।'' शायद

शिवाजी को भी ऐसी कल्पना नहीं सूझी होगी! बच्चों के किलों पर सजाने के लिए मिट्टी के खिलौने खरीदते समय हमें एक बार फिर अपने बचपन की यादें तरोताज़ा हो जाती हैं।

बड़े लोगों को त्यौहारों में कोई नवीनता नहीं दिखती। उनके लिए तो हर साल, वही पुराना पर्व बार-बार आता है। परंतु बच्चों के लिए हर साल का त्यौहार एक नया रंग लेकर आता है। बच्चे उसमें अपनी सूझ-बूझ और अटकलें लगाकर उसे नया रूप देने की कोशिश करते हैं। एक साल दिवाली पर उन्होंने एक टोकड़ी में धान के बीज बोए और उसमें उगी कोमल घास से रंगोली बनाई तो दूसरे साल ईंटों का ऊंचा ढांचा बनाकर उस पर दियों को सजाया। एक साल बच्चों को एक नई सूझ आई- हवाई जहाज से ज़मीन पर जलते दिये कैसे दिखते होंगे? फिर सब लोग उसकी तैयारी में लग गए। उसके लिए खास तरीके से छोटे-छोटे दीप बनाए गए। दीपों की यह रंगोली केवल पंद्रह मिनट तक ही जली। परंतु जब जगमगाते लाल-पीले दियों का प्रकाश बच्चों और ताईयों के चेहरे पर पड़ा तो उसकी छटा बस देखते ही बनती थी। एक बार बच्चों ने दीवाली पर पकवान बनाने की ठानी। शक्करपारे बनाने का सारा सामान जुटाया गया। कुछ समय तक तो सामान्य आकार के ठीक-ठाक शक्करपारे बनते रहे। फिर बच्चों की कल्पना ने उछाल मारा और उन्होंने अलग-अलग आकार के शक्करपारे बनाना शुरू कर दिए। अब ताई को तलने के लिए बनियान के आकार, क्रिकेट के बल्ले और खिलौनों के आकार के शक्करपारे मिलने लगे। इस प्रकार बच्चों को खूब हंसी भी आई, उनका खेल भी हुआ और खाने को शक्करपारे भी मिले।

बच्चों के साथ खेलते-खेलते काम करने में बड़ा आनंद आता है। जिस प्रकार हम सोचते हैं बच्चे उस तरह काम नहीं करते हैं। वह उसे खुद की कल्पना के अनुसार ढालते हैं और हमें उनसे हर बार कुछ नया सीखने को मिलता है। स्कूल के पाठ्यक्रम में, खेलों और अन्य गतिविधियों में कुछ ऐसे खाली स्थान होने चाहिए जिन्हें बच्चे अपनी कल्पना के रंगों से भर सकें। स्कूली व्यवस्था को, बच्चों की स्वतंत्र कल्पना को उभरने के लिए स्थान देना चाहिए। उसे निगलना नहीं चाहिए।

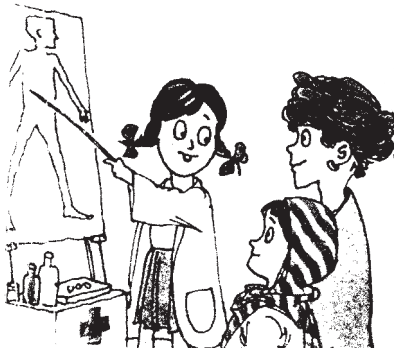

चित्रकला में बच्चे ताईयों के साथ मिलकर अनेकों प्रयोग करते हैं। चित्र कागज़ पर ही बनाया जाए यह ज़रूरी नहीं। चित्र को दीवार पर, फर्श पर, ज़मीन पर, कहीं भी बनाया जा सकता है। हाल ही में बच्चों ने अपने मुंह को रंगने की एक नई करतब खोज निकाली है। इसमें चेहरे पर सुंदर रंग भरकर, अलग-अलग जानवरों और चिड़ियों के मुंह बनाए जाते हैं। बच्चे इस काम को बड़ी रुचि और चाव से करते हैं।

बालभवन में नियमित आने वाले- आदित्य के पिता, एक चित्रकार हैं। उनको यह लगता था कि बालभवन के बच्चों को हॉल की दीवारों पर चित्र बनाने चाहिए। पहले उन्हें लगा कि वो खुद दीवारों पर चित्र बनाएं और बच्चे उनमें केवल रंग भरने का काम करे। लेकिन बच्चों का उत्साह देखकर हमने कहा, ''बच्चों की जैसी मर्ज़ी हो उन्हें वैसे ही चित्र बनाने दें।'' और देखते ही देखते सभी दीवारें चित्रों से भर गईं

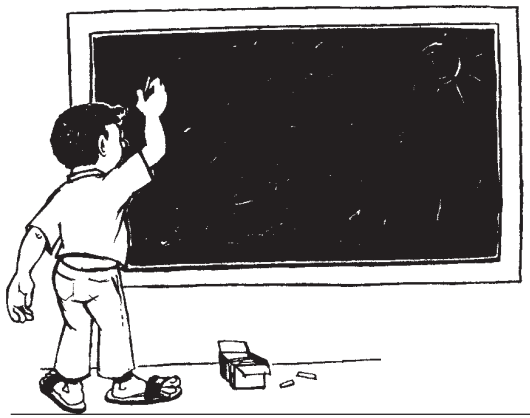

और हॉल में एक नई जान आ गई। सारे समय बच्चे चित्रकार चाचा के पीछे ही पड़े रहे, ''यह देखो, वह देखो,'' कहकर उन्हें इधर से उधर दौड़ाते रहे। बच्चों के मुंह-हाथ तक रंग से सन गए। उनके कपड़ों से रंग टपक रहा था, परंतु फिर भी दीवार पर नए-नए चित्र जन्म ले रहे थे। यह प्रेरणास्पद दृश्य देखकर चित्रकार चाचा को एक कविता याद आई और जल्दी ही वो कविता भी दीवार पर जा बैठी। ऐसा लगता था जैसे वह मूक दीवार बालभवन की तितलियों से बातचीत कर रही हो और उन्हें शुभ आर्शीवाद दे रही हो। ''बालभवन में ऐसे ही तितलियों का साम्राज्य रहे,'' यही उस कविता का मतलब था।

एक बार बालभवन में 25 स्टूल खराब हो गए— किसी की टांग टूट गई तो किसी की सीट निकल गई। जब बड़े बच्चों से उन स्टूलों की मरम्मत करने को कहा गया तो वे बड़े उत्साह से उस काम में लग गए। ठोका-पीटी समाप्त करने के बाद उन्होंने रेगमाल से स्टूलों को घिसा और फिर उन पर नई वार्निश लगाई। कुछ स्टूलों पर बच्चों ने पेंट से सुंदर चित्र भी बनाए। इस प्रकार बच्चों को श्रम का महत्व और मेहनतकशों के दर्द का भी कुछ एहसास हुआ। यह अपने आप में एक बड़ी शिक्षा है।

पत्तों, तिनकों, मिट्टी, कागज़, इमली के बीज, कांच, मूमफली के छिलके, लकड़ी का बुरादा, थर्मोकोल के टुकड़े आदि से तो बच्चे चित्र और वस्तुकला बनाते ही हैं। अगर बच्चों को थोड़ा सा भी प्रोत्साहन मिले तो फिर वो कमाल ही कर दिखाते हैं। उन्होंने पेपर-डिश (कागज़ की प्लेटों) से पक्षी, प्राणी, मनुष्य और न जाने कितनी अन्य वस्तुएं बनाईं। प्लेट के गोल भाग और चारों ओर की किनार का समुचित उपयोग किस प्रकार किया जाए यह उन्हें अच्छी तरह समझ में आया। एक ही चीज़ को अलग-अलग दृष्टिकोण से देखने की समझ भी आई। प्लेट को आधी में काटने से उससे तरबूज़, चूहा, पेड़, छतरी, हिलने-डुलने वाली गुड़िया और जापानी फ्रॉक वाली गुड़िया बनती है। किनार की झालर से इल्ली और सांप जैसी चीज़ें बनती हैं। इन चीज़ों को बनाने और रंगने में एकदम जादुई अनुभव मिलता है।

बच्चे हाथ की आकृति में भी अलग-अलग चित्र खोज कर बनाते हैं। इसमें पहले हाथ के पंजे को फैलाकर कागज़ पर रखा जाता है और फिर पेंसिल से उसका रेखा चित्र बनाया जाता है। पंजे के इस चित्र से कभी कबूतर तो कभी तितली बन जाती है। इनके अलावा मोर, मछली, मुर्गी और न जाने क्या-क्या जानवर बन जाते हैं। चित्रकला और हस्तकला के यह प्रयोग करते समय बच्चे एक अलग ही दुनिया में खो जाते हैं। चित्र बनाने के बाद बच्चे तुरंत भाग कर, उन्हें ताई को दिखाने के लिए लाते हैं। एक बार मेरे पास एक बड़ा लड़का और एक छोटी लड़की अपने चित्र दिखाने के लिए आए। मैं कुछ काम में व्यस्त थी इसलिए वह दोनों खड़े रहे। लड़की अपना चित्र दिखा भी न पाई थी कि लड़के ने उससे कहा, ''तुम्हारा चित्र अच्छा है। अब जाओ।'' उसने ऐसा क्यों कहा? मैं इस पर काफी देर तक विचार करती रही। आखिर, इसका उत्तर स्टाफ मीटिंग में मिला। एक ताई ने कहा, ''जब बच्चे हमें अपना चित्र दिखाने आते हैं तो हम अक्सर समूह में होते हैं। समय के अभाव के कारण हम चित्र को बिना देखे ही अच्छा होने का बहाना बना देते हैं। तुम्हारा चित्र अच्छा है जाओ। शायद हमारा ही गलत संस्कार उस लड़के ने अपनाया है।''

अगर हस्तकला सिखाने वाला कोई सच्चा गुरु मिले तो बच्चे बहुत सी महत्वपूर्ण बातें बचपन में ही सीख जाते हैं। अपनी कलाकृति को ठीक-ठाक, साफ-सुथरा और सुंदर कैसे बनाएं यह बात उनकी समझ में आती है। सुंदरता के प्रति उनका एक नज़रिया बनता है। हस्तकला से न केवल खूबसूरत चीज़ें बनती हैं, परंतु अच्छी आदतों का भी विकास होता है। अच्छे हस्तशिल्पियों का काम बस देखते ही बनता है। कला का मतलब केवल सजावटी चीज़ें बनाना नहीं बल्कि हरेक काम में सुंदरता लाना है। सब्ज़ी काटना भी एक कला है, तब यह समझ में आता है।

गुरुजी से भेंट

जिन लोगों को किसी भी कला से अथाह प्रेम है उनके संपर्क में आने से बच्चों पर बहुत ही अच्छे संस्कार पड़ते हैं। जब विष्णुपंत चिंचालकर (गुरुजी) और अरविन्द गुप्ता जैसे लोग बच्चों के साथ बैठकर उन्हें सहजता से कुछ चीज़ें दिखाते हैं तो उससे बच्चों को अपार आनंद मिलता है।

गुरूजी के अनुसार, चित्र तो सभी जगह होते हैं। बस उन्हें देखने भर की दृष्टि चाहिए। दीवार के कोने में लगे मकड़ी के जाले में भी एक चित्र छिपा है। अगर हम देख सकें तो जली हुई रोटी के धब्बों में और छत पर पड़ी सीलन और दरारों में भी अद्‌भुत कलाकृतियां छिपी पड़ी हैं। बस हम में उन्हें देखने की संवेदना होनी चाहिए। अगर ऐसी दृष्टि होगी तो फिर हम अक्षरों में भी चित्र देखने लगेंगे। ***क्ष*** को अगर हम गौर से देखें तो उसमें हम एक बंदर छिपा पाएंगें। ***म*** को उल्टा करेंगे तो उसमें साक्षात बिल्ली के दर्शन होंगे। टूटी हुई चप्पल में मोनालीसा सोई है। हम अपने नयन चक्षु खोलें तभी हम उसे जगा पाएंगे। आम की गुठली में हमें साक्षात रवीन्द्रनाथ टैगोर और आइंस्टीन के दर्शन हो सकते हैं। गुरूजी ने चित्रकला को - जो अपने फ्रेम यानि चौखट की परिधि से बंधी थी, को तोड़ दिया है। बच्चों में अलग-अलग आकारों को देखने की एक मौलिक क्षमता प्रतिभा होती

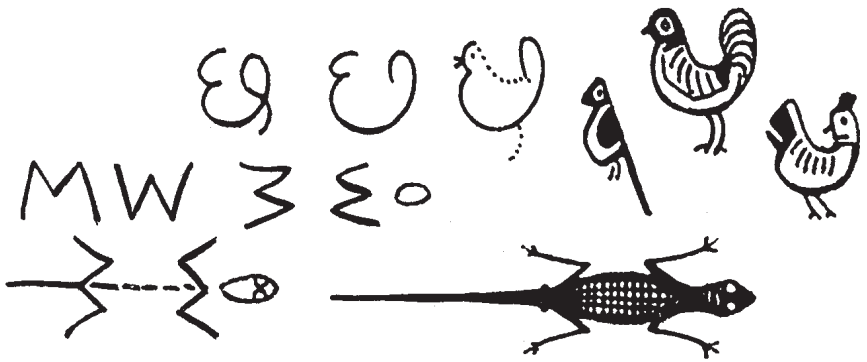

कबाड़ से जुगाड़

अरविन्द गुप्ता एक ऐसे व्यक्ति हैं जो विज्ञान की दुनिया में खोए रहते हैं। वो रोज़मर्रा काम में आने वाली चीज़ों में विज्ञान की झलक दिखाते हैं। जैसे माचिस की तीलियों और साइकिल के वाल्व ट्यूब को जोड़कर अनेकों आकृतियां बनाई जा सकती हैं। यह ज्यामिती सीखने का एक अच्छा तरीका है। पुराने पेन की रीफिलों, साइकिल की वाल्व ट्यूब, पोस्टकार्ड, सिक्कों, ईंटों, हवाई-चप्पलों, प्लास्टिक की थैलियों, बोतलों के ढक्कनों, अंडों के छिलकों आदि में छिपे हुए विज्ञान के तत्वों को वो बड़ी सरलता से खेल-खेल में हमारे सामने रखते हैं। यह वही चीज़ें हैं जिन्हें हम सालों से देख रहे हैं और बेकार समझ कर फेंक रहे हैं। यह कबाड़ की चीज़ें भी शिक्षा का एक सशक्त माध्यम बन सकती हैं। इन लोगों से मिलकर और उनके काम को देखकर शिक्षा का सही महत्व समझ में आता है। सा विद्या या विमुक्तये के अर्थ का वास्तविक अनुभव प्राप्त होता है। चिंचालकर गुरूजी की चित्रकला और अरविन्द गुप्ता का विज्ञान हमें सीमित बंधनों से मुक्त करता है।

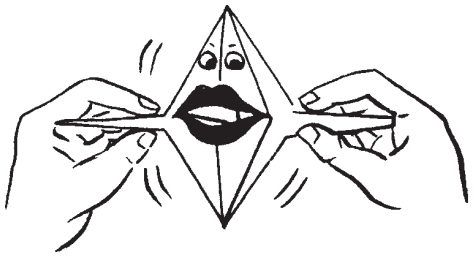

बच्चों को सही शिक्षा देनी हो तो उन्हें ऐसे लोगों के संपर्क में लाना चाहिए। इस प्रकार के लोगों को बच्चों तक कैसे पहुंचाएं? ऐसे सच्चे लोगों के काम पर फिल्में बननी चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में ऐसे कितने ही लोग हैं, जिन्हें बच्चों की दुनिया में, बच्चों के संपर्क में लाना चाहिए। इनके साथ केवल दस मिनट का समय बिताने से बच्चे जो कुछ सीखेंगे वह दूसरों के साथ दस घंटे बैठकर भी नहीं सीख पाएंगे।

छोटे बच्चों का मन सच्चा और निष्पाप होता है। उनके साथ रह कर हम बहुत सी बातें सीख सकते हैं। कभी-कभी मुझे सच में ऐसा लगता है कि

कहीं हम सिखाने, शिक्षण और संस्कार निर्माण के नाम पर बच्चों के निर्मल झरने जैसे मन को जल-प्रवाह को गंदा तो नहीं कर रहे हैं? उन्हें मुक्त करने की बजाए कहीं हम उन्हें और बंधनों में तो नहीं जकड़ रहे हैं? जो बच्चों के कोमल मन को पहचानता है वही सच्चा शिक्षक है! हमें बच्चों की जिज्ञासा और उनके प्रश्नों से डर लगता है। उनको एक-जैसे सांचे में ढाल कर ही हम उनपर राज़ कर सकते हैं। इसी व्यवस्था का नाम है - ***स्कूल***। स्कूल रूपी संस्था इतनी मज़बूत है कि उसका विरोध करना और उसे तोड़ पाना बच्चों के लिए संभव नहीं है। इसीलिए बच्चों को स्कूलों में, एक लाइन में खड़ा होना पड़ता है, मुंह पर उंगली रखनी पड़ती है और घंटों तक नीरस भाषणों को सुनना पड़ता है। इस प्रकार के अत्याचारों से न जाने कितने सारे बच्चों का बचपना ही छिन जाता है।

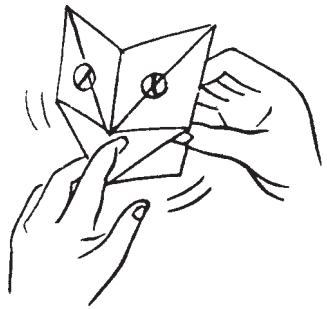

बच्चों में सीखने की अद्‌भुत क्षमता होती है। वे हमेशा ही कुछ नया करने, सीखने और सुनने को इच्छुक होते हैं। कुछ नया करते वक्त उनकी आंखों में एक चमक आ जाती है। परंतु जब मैं बच्चों को ऊबता देखती हूं तो खुद को अपराधी जैसा महसूस करती हूं। ऊबने के कारण ही बच्चों में, और हमारे बीच एक दीवार खड़ी हो जाती है। जब बच्चे ऊब रहे हों तो उन्हें भाषण देते रहने में कोई बड़प्पन नहीं है। इससे मैं बेचैन हो जाती हूं। हमें बच्चों को नीरस भाषण देने की पद्धति को बदलना चाहिए। ***बोलने और सुनने*** की विधि - जो कि शिक्षा की बुनियाद है को उखाड़ कर फेंक देना चाहिए। बच्चे बिना थके, बिना ऊबे जितना सुन सकते हैं हमें बस उतना ही बोलना चाहिए।

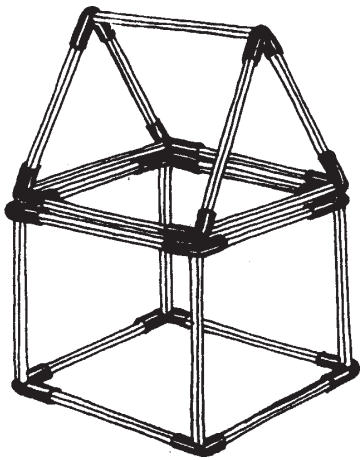

विशेष बच्चों को लाभ

केयूर नाम के बच्चे को ***करने वाली विधि*** से बहुत फायदा हुआ। वो एक लंबी बीमारी से उठा। बीमारी के बाद उसे ठीक से सुनाई नहीं देने लगा। तब उसने मां से बालभवन जाने का आग्रह किया। उसने कहा,''मुझे वहां सब कुछ समझ में आता है।'' उसका आत्मविश्वास बढ़ाने में बालभवन सहायक हो सका।

अक्षय एक स्पास्टिक (ऐसी अपंगता जिसमें दिमाग काम करता है परंतु शरीर नहीं) बालक है। वो अपने दिमाग में हर बात को अच्छी तरह समझता है, परंतु उसका चलने-फिरने पर कोई नियंत्रण नहीं है। जब अन्य बच्चों को कूदने के लिए रस्सियां दीं तो शशिताई ने उसे भी एक रस्सी दी। वो अपने हाथ से रस्सी को केवल घुमाता रहा। दूसरे बच्चों के साथ रहकर अक्षय, धीरे-धीरे अच्छी तरह चलने लगा और बोलने लगा। इससे उसके हाव-भाव पर भी अंतर पड़ा। अपंग बच्चों के प्रश्नों को समझ पाना मुश्किल होता है। सामान्य बच्चों के प्रश्न तो अक्सर खेल के दौरान समझ में आ जाते हैं।

एक पांच साल के लड़केकी कहानी इस प्रकार है। जब कभी भी उससे चित्र बनाने को कहा जाता था तो वो कागज़ पर एक बड़ा सा पेड़ बनाता था और उस पर ***फांसी*** की रस्सी से लटका एक आदमी बना देता। मैदान में बच्चे अक्सर, छोटे-छोटे पत्थर इकट्ठे करते और उनको सजा कर कोई फूल या कोई घर बनाते। परंतु यह बच्चा पत्थरों का हमेशा एक चौकोर बनाता और उसे जेल कहता। वो ऐसा क्यो करता था इसका कुछ पता नहीं चला। इतनी छोटी उम्र में ***फांसी और जेल*** की बातें उसे क्यों सताती थीं? कहीं वो अपराधी प्रवृति का लड़का तो नहीं था? एक दिन मैं उसके घर गई। घर अच्छा था। घर में दादा-दादी, माता-पिता,

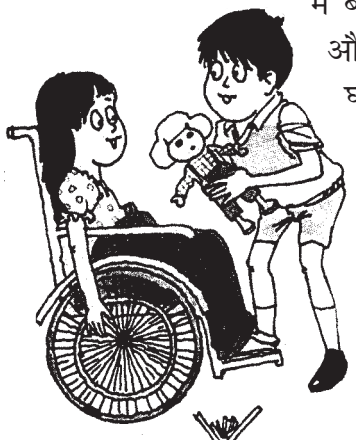

चाचा-चाची समेत छह सदस्य थे। सभी अच्छे पढ़े-लिखे। परंतु जो डेढ़ घंटे मैं वहां रही, उसमें सभी लोग आते-जाते उसे बच्चे को टोकते रहे - ऐसा मत करो, वैसा मत करो, खिड़की पर मत चढ़ो, बाहर मत झांको जैसी झिड़कियां देते रहे। उन्हें लग रहा था कि वे बच्चे में अच्छे संस्कार डाल रहे हैं, परंतु बच्चे पर उनका गलत परिणाम हो रहा था। मैंने उसकी मां से इस संबंध में बात की। उन्होंने उस पर गहराई से विचार किया और परिवार के अन्य सदस्यों से इस बारे में चर्चा की। फिर उनके व्यवहार में परिवर्तन आया। लड़के पर पड़ रहा दबाव कम होने लगा। उस लड़के को अपना घर जेल जैसे और घर के बंधन फांसी के फंदे जैसे लगते थे। इसीलिए वो उस प्रकार के वीभत्स चित्र बना रहा था।

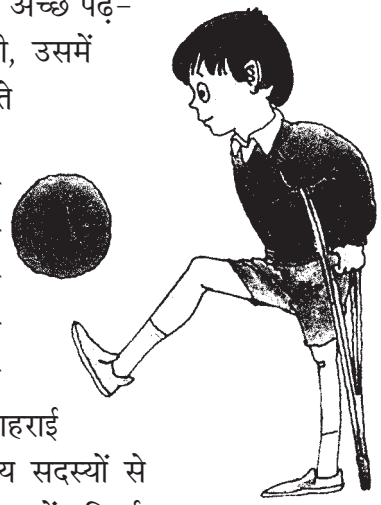

रोहित की कहानी भी कुछ-कुछ ऐसी ही थी। जब वब केवल आठ साल का था तभी उसे चश्मा लगाना पड़ा। उसकी मां यही देखती रहती थीं कि रोहित अपनी टीम में क्या कर रहा है। वो बात-बात पर रोहित को टोकती रहती थीं। एक बार मेले में 30-35 प्रकार के खेल लगाए गए थे। रोहित की मां भी उसमें आईं थीं। रोहित एक भी खेल ठीक से नहीं खेल पा रहा था, क्योंकि उसकी मां उसे बार-बार बीच में ही टोक रहीं थीं। ताई के कहने पर मैंने रोहित की मां को आफिस में बुलाकर समझाया। मैंने कहा कि आप रोहित को टोकिए नहीं। वो जो भी कर रहा है उसे करने दीजिए। फिर रोहित की मां ने उसके काम में दखल देना बंद कर दिया। वो बालभवन में आकर एक पत्रिका पढ़ती रहती थीं। दो दिन बाद रोहित मेरे आफिस में आया और कहने लगा, ''जो बाहर बैठकर पत्रिका पढ़ रही हैं, वो मेरी सगी मां हैं, परंतु घर में मेरी सौतेली मां भी हैं।'' मुझे काफी अचरज हुआ। मैंने उसकी मां को बुलाकर पूछा तो उन्होंने कहा,''रोहित

झूठ बोल रहा है। आप खुद ही घर पर आकर देख सकती हैं।'' रोहित की मां ने बताया कि वो पहले टीचर थीं और नवीं-दसवीं की कक्षाओं को पढ़ाती थीं। देर से शादी होने के कारण, संतान भी देरी से हुई और इसीलिए उन्होंने नौकरी छोड़ दी। मैंने पूछा,''अब आप क्या करती हैं?'' उन्होंने कहा, ''क्या बताऊं, पूरे दिन रोहित के पीछे ही लगना पड़ता है। उसे सुबह उठाती हूं, मंजन कराती हूं, नहलाती हूं, दूध पीने को देती हूं, पढ़ाई करने को कहती हूं। फिर खाना बनाती हूं, इसे स्कूल छोड़कर आती हूं, घर आने पर इसे खाना खिलाती हूं और फिर यहां पर आती हूं।'' यह सब बातें सुनकर मुझे ऐसा लगा जैसे यह सब काम रोहित की मां ने खुद अपने ऊपर लादे हैं। मैंने उन्हें ट्यूशन क्लासेस चलाने की सलाह दी। मैंने उनसे कहा कि रोहित अपना काम खुद करने में सक्षम है। उन्हें यह बात पसंद आई। रोहित अब बारहवीं में पढ़ रहा है। एक दिन उसकी मां ने मुझसे आकर कहा,''अगर आप मुझे उस दिन आगाह न करतीं तो आज मैं और रोहित, एक-दूसरे के कट्टर शत्रु बन गए होते।'' रोहित को बालभवन में पत्रिका पढ़ने वाली मां सगी और घर में काम के लिए पीछे पड़ने वाली मां सौतेली लगती थी।

अन्या तीन साल की थी तभी से बालभवन आ रही है। वो देखने में सुंदर और नाज़ुक थी परंतु बोलती बहुत कम थी। शुरू में, बालभवन में आते ही वो रोने लगती थी। उसका मन बालभवन में नहीं लगता था। एक दिन जब वो रो रही थी तो मैंने उसे गोद में उठाया और उससे कहा, ''चलो, हम बालभवन के पेड़ देखते हैं।'' उसकी

दादी बीमार थीं। जब मैंने दादी की तबियत के बारे में पूछा तो उसने गर्दन हिला कर ना का इशारा किया। वो बोलने का नाम ही नहीं लेती थी। अशोक के पेड़ के नीचे पहुंच कर मैंने चार पत्ते उठाए और अन्या से कहा, ''पहला पत्ता अन्या की दादी हैं। दूसरा पत्ता अन्या के पिताजी हैं। तीसरा पत्ता दिखाकर कहा कि यह अन्या की मां हैं और यह चौथा पत्ता कौन है? यह अन्या है।'' मेरी बात सुनकर उसकी आंखों में चमक तो आई परंतु फिर भी वो कुछ बोली नहीं। फिर मैंने उसे कढ़ी-पत्ता दिखाया और उसे पत्ता सूंघने के लिए दिया। मैंने उसे कई पत्ते घर ले जाने के लिए दिए। ''मां से कहना कि इन्हें दाल में डालें'', मैंने कहा। अन्या ने जवाब में केवल गर्दन हिलाई पर वो कुछ बोली नहीं। दूसरे दिन उसके पिताजी बालभवन आए और कहने लगे, ''जो-जो बातें आपने कहीं, उन सभी को अन्या ने आकर घर पर बताया। आज अन्या बहुत खुशी से बालभवन आने को तैयार हो गई।''

कुछ बच्चे रोज़ मां-बाप के झगड़ों को देखते हैं। कुछ ने अपने पिता की मृत्यु देखी थी। एक-दो ने तो अपनी मां को जलते हुए भी देखा था। कुछ बच्चों के पिता को किसी व्यस्न की खराब आदत हाती है जिसकी वज़ह से बच्चे तनावपूर्ण वातावरण में पलते हैं। घर में मां-बाप, दादा-दादी के झगड़े देखकर, बच्चों का तनाव बढ़ता है। ऐसी परिस्थिति में, बच्चों पर विशेष ध्यान देना पड़ता है और उनके साथ अधिक समय बिताना पड़ता है। वे दूसरे बच्चों के साथ घुलते-मिलते हैं या नहीं इस पर भी ध्यान देना पड़ता है। ऐसी बातों का प्रशिक्षण शिक्षकों को कहां मिल सकता है? अनिरुद्ध, सिद्धार्थ और राधिका जैसे बच्चे बहुत आत्म-सम्मानी होते हैं।

इन बच्चों को बिना कारण डांटना, या फिर बिना बात सिर पर हाथ फेरना नापसंद है। वे हमेशा अपना काम ठीक प्रकार से व्यवस्थित करने की कोशिश करते हैं। अन्य लोग उनके साथ इज़्ज़त के साथ पेश आएं ऐसी उनकी अपेक्षा होती है। कुछ बच्चे अपने समूह में किसी के भी साथ प्यार से नहीं रहते। इन मौकों पर ताईयों की सही परीक्षा होती है। इन बच्चों की असलियत को पहचान पाना एक कठिन काम होता है। उनके साथ अलग विशेष व्यवहार करना पड़ता है। वे समूह से अपना संबंध न तोड़ें, इसके लिए कोई न कोई युक्ति लगानी पड़ती है। बच्चों की खासियतों और ज़रूरतों, उनकी ताकतों को समझने के लिए कोई विशेष शिक्षा की ज़रूरत नहीं है। अनुभव और संवेदनशीलता से यह बातें खुद धीरे-धीरे समझ में आने लगती हैं। अगर हमारे पास बच्चों के साथ बिताने के लिए पर्याप्त समय है तो हम अवश्य, बालमन की गहराईयों तक पहुंचने में सफल होंगे।

छुट्टियों में विशेष शिविर

अप्रैल-मई में स्कूल बंद होते हैं। उन दिनों हमारा काम तीन-चार गुना बढ़ जाता है। सामान्य तौर पर जो बच्चे बालभवन में नहीं आ पाते हैं ऐसे 500-600 बच्चे, डेढ़ महीने की छुट्टियों में बालभवन में आते हैं। बालभवन में उनके लिए विशेष कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। दूसरे शहरों से आए हुए बच्चे भी, इन कार्यक्रमों में भाग लेने को बहुत उत्सुक होते हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर कोई 1,000 बच्चे, छुट्टियों में रोज़ाना बालभवन में आते हैं। हम लोग खेलकूद के, विभिन्न कलाओं के और अध्ययन के लगभग चालीस शिविरों का आयोजन करते हैं।

हर साल कल्पनाताई कला-कौशल का एक शिविर लगाती हैं। वो बच्चों से इतनी सुंदर और उपयुक्त चीज़ों का निर्माण करवाती हैं कि उन कला-कृतियों को देखकर ऐसा नहीं लगता है कि इन्हें बच्चों ने ही बनाया है। कमलाताई, पुष्पाताई और चार-पांच अन्य ताईयां मिलकर ***खाना***

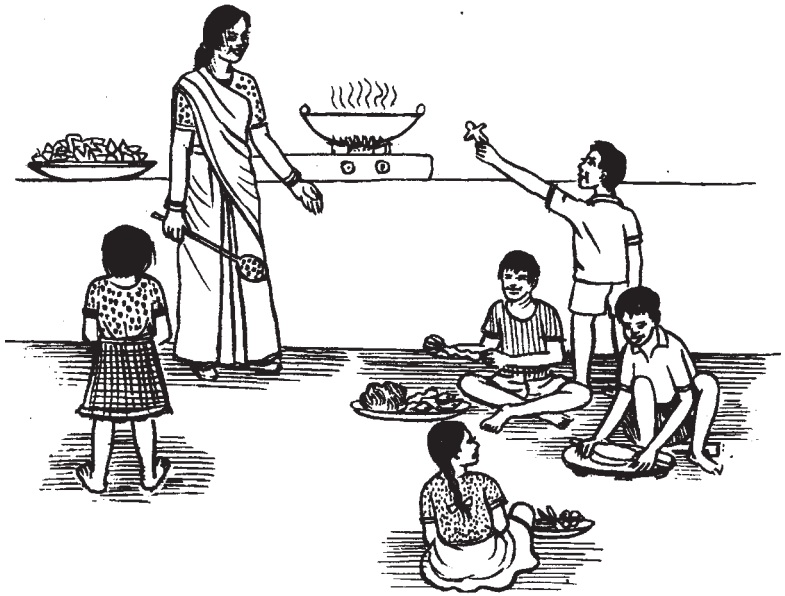

बनाना सीखने का शिविर लगाती हैं। लड़कों और लड़कियों दोनों को, खाना बनाना आए और उनके मन में इसका डर दूर हो यही इसका उद्देश्य है। 3 से 6 वर्ष की आयु के बच्चों को ऐसे व्यंजन बनाना सिखाए जाते हैं जिनमें पकाना - यानि आग या गैस की आवश्यकता न पड़े। इसमें शरबत, लस्सी, चपाती के लड्डू आदि बनाना सिखाए जाते हैं। इससे बच्चे काटना, कसना, मथना, गूंदना आदि बातें सीख जाते हैं। चाकू से काटने में बच्चों को अपार आनंद मिलता है और खुशी उनके चेहरों पर साफ झलकती है। अदिती ने बालभवन में जोकर वाला सैंडविच बनाना सीखा। अब वो घर में आने वाले सभी मेहमानों को वही जोकर वाला सैंडविच ही खिलाती है। जोकर वाला सैंडविच बनाना एकदम आसान है। कटोरी से ब्रेड के दो गोले काटो और उनके बीच में मक्खन, जैम, चटनी आदि लगाकर ऊपर से गाजर की आंखें और मुंह और मूमफली के दाने की नाक लगाओ। एक बार बारह साल के लड़के ने पूरी बनाते समय जब अपनी मां से पूछा,''क्या मैं लोई बना दूं?'' तो मां को बेहद खुशी हुई।

पैदल सैर

पैदल चलकर, पुणे-दर्शन करने के शिविर, मैं पिछले दस साल से चला रही हूं। इसमें दस दिनों तक रोज़ दो घंटे पैदल चलकर पुणे शहर के अनेक दर्शनीय स्थलों को देखने का मौका मिलता है। चलते समय हम लोग रास्ते में दिखने वाले पेड़ों, इमारतों के वास्तु-शिल्प, सड़कों, पुतलों और ऐतिहासिक महत्व के स्थानों के बारे में गपशप लगाते हैं। यही इस शिविर का स्वरूप है। शनिवार वाडा, आगाखान पैलस, एम्प्रेस गार्डन व ओशो आश्रम, पर्वती, वाघजई, मार्केट यार्ड, विट्ठलवाडी का मंदिर, कात्रज की झील और वहां का सर्पोद्यान, पुणे विद्यापीठ, पाषाण झील, पातालेश्वर जैसी जगहों पर हम पैदल जाते हैं। किसी जगह जाने से पहले हम नक्शे पर उसे खोजते हैं और फिर जाने का मार्ग तय करते हैं। इससे बच्चों को नक्शे पर दूरी मापने का सही अंदाज़ हो जाता है।

इस शिविर में बच्चे बहुत सी बातें सीखते हैं। भीड़ वाली सड़क पर सावधानी से चलना, वाहनों पर ध्यान देना, सड़क पार करना जैसी कुशलताएं तो आती ही हैं। रास्ते में मिलने वाले सभी पुतलों की भी जानकारी मिलती है। सड़कों के नामों

के पीछे क्या आधार है? अलग-अलग म्यूज़ियम और वस्तु-संग्राहलयों की क्या विशेषताएं हैं? संस्थाओं और मंदिरों के नामों के बारे में बातचीत होती है। मई में गुलमोहर, पंगारा, कचनार, सेमल आदि के फूलों से पेड़ लदे दिखाई देते हैं। उनसे जान-पहचान हो जाती है और उनके बारे

में काफी जानकारी भी हासिल होती है। चलते-चलते अनेक प्रकार के पक्षी भी देखने को मिलते हैं। अमीरों की बस्ती, झोपड़-पट्टी, दुकानें, कारखानें जो भी बच्चे देखते हैं उनके नाम वो नोट करते हैं और दूसरे दिन उन्होंने जो भी लिखा है, उसे दिखाते हैं।

इन दस दिनों में आपसी सहयोग की भावना भी पनपती है। बच्चे एक-दूसरे के स्वभाव से परिचित हो जाते हैं। वो एक-दूसरे पर गाने लिखते हैं और उन्हें उपनाम देकर चिढ़ाते भी हैं। एम्प्रेस गार्डन के साफ पानी वाले नाले में, बच्चों को खेलने में भी अपार आनंद मिलता है। शुरू-शुरू में तो बच्चे नाले में डरते-डरते पांव रखते हैं, फिर थोड़ी देर में एक-दूसरे पर छींटें फेंकने लगते हैं और अंत में झरने में लेट कर नहाते हैं। वे बार-बार ताई से पूछते हैं,''हम यहां पर दुबारा कब आएंगे?'' ऐसा ही मज़ा उन्हें पुणे विद्यापीठ में भी आता है। यूनिवर्सिटी में लंबी चलाई करनी पड़ती है। उससे बच्चे बहुत थक जाते हैं। वापिस आने से पहले हम लोग वहां की पुरानी कैंटीन में जाकर आलू-बोंडे खाते हैं। उसके बाद बस पकड़ कर वापिस आते हैं। बच्चों को इस प्रकार की सैर में बड़ा मज़ा आता है। हम-भी-अब-बड़ों-जैसे-हैं, ऐसा भाव उनके चेहरे से झलकता है।

शिविर के समापन वाले दिन, सभी बच्चे मिल कर भेल और शरबत

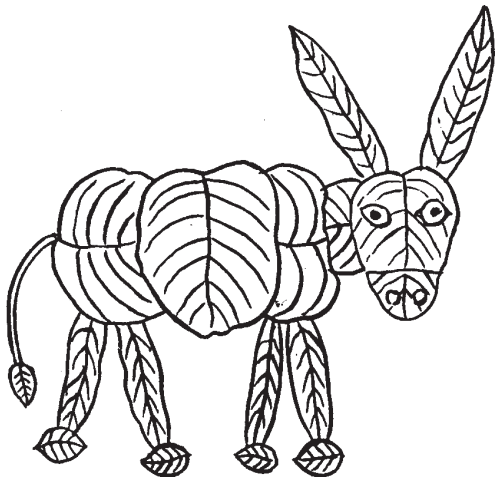

आदि बनाते हैं। कौन सा बच्चा क्या लाएगा, यह तय होता है। प्याज़ और टमाटर को घर से काटकर ही लाना होता है। उस दिन मैं उनसे पूछती हूं, ''जब तुम किसी अनजान शहर में जाओगे तो क्या-क्या करोगे?'' क्योंकि बच्चों के पास पिछले नौ दिनों का एक समृद्ध अनुभव होता है, इसलिए वे उसके आधार पर, दस मिनट में, झटपट पचास प्रश्नों के उत्तर दे डालते हैं। इन प्रश्नों में सामान्य ज्ञान और शहर की काफी जानकारी शामिल होती है। उसमें नदी, पर्वत, पठार आदि के नाम होते हैं। विद्यालय, मंदिर और सामाजिक संस्थाएं होती हैं। सामाजिक कार्यकर्ताओं के नाम और उनकी विशेषताएं होती हैं। गरीबों की झोपड़-पट्टी और अमीरों की बस्ती कहां है, इस बात का शोध होता है। कारखानों के नाम पूछे जाते हैं। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पूछी जाती है। उस नगर के लोगों के रहन-सहन का वर्णन पूछा जाता है। ''क्या वहां बच्चे स्कूल जाते हैं? ऐसे प्रश्न भी होते हैं। फिर बच्चों ने जो कुछ भी देखा है उसे समझाने के लिए पुणे शहर का नक्शा निकाला जाता है। नदी के पुल के ऊपर या नीचे, बाएं या दाएं, वे इस प्रकार जगह की सही स्थिति बताते हैं। सभी दिशाओं की उन्होंने सैर की है, ऐसा आश्चर्य का भाव उनके चेहरे पर होता है। इस बार पैदल चलते समय हमने चलने पर एक गीत तैयार किया। इसमें ताली बजाते-बजाते पहले पंद्रह कदम आगे फिर दो कदम पीछे जाना होता है। उसके बाद गाना गाते-गाते आगे चलना होता है। यह गाना गाते हुए, हम न जाने कितना पैदल चले, परंतु फिर भी किसी को थकावट महसूस नहीं हुई। सभी को हाथों में हाथ डाल कर सिफ़्र चलने का मज़ा ही याद रहा।

खुशियों का शिविर

हर साल हम कुछ नया खोजने का प्रयास करते हैं। इस वर्ष खुशियों का शिविर काफी सफल रहा। 3 से 5 वर्ष के बच्चों ने इसमें भाग लिया। इस बार के शिविर में गाने-बजाने के यंत्रों से खेलने का एक कार्यक्रम था। मुख्य विषय था जंगल। बच्चों की मदद से जब हमने सूखी झाड़ियों पर रंग-बिरंगे कागज़ के टुकड़े चिपकाए, तो वे पेड़, सपनों जैसे सुंदर लगने लगे। फिर पेड़ों के ऊपर लटकती बेलें बनाईं। एक बड़े टब में पानी भर कर तालाब तैयार किया। तालाब के चारों ओर खिलौनों के जानवर सज़ाए। दो गुफाएं भी बनाई गईं। जब मेज़ और स्टूल को सज़ा कर उन पर कंबल डाला तो वो एकदम पहाड़ी गुफा जैसा दिखने लगा। एक बड़ा सा पहाड़ भी बनाया और उसपर पेड़ लगाए। बच्चों को कौन सा जानवर बनना है उस हिसाब से मुखौटे भी बनाए गए। जानवरों पर नाटक और गाने तैयार किए गए। इतने में बालभवन में छह फीट ऊंचा भालू आ गया। उसे देख कर कई बच्चे डर गए। कुछ बच्चे आपस में काना-फूसी करने लगे,''भालू के पांव में जूते हैं?'' भालू चुपचाप गुफा में जाकर बैठ गया। सभी पालक और बच्चे उसकी ओर घूर-घूर कर देख रहे थे। फिर भालू अपनी गुफा से बाहर निकला और उसने तालाब में जाकर पानी पिया। वो फिर एक छोटी सी निडर लड़की के पास गया और उसने उसे गोद में उठा लिया। कुछ बच्चे अब हिम्मत करके उसे जाकर छूने लगे। थोड़ी देर बाद भालू स्लाइड पर फिसलने लगा। उसने बच्चों के हाथों को अपने हाथों में लिया। फिर वो पहाड़ी पर जाकर सो गया। बच्चे उसे चारों ओर से घेरकर बैठ गए। कोई उसकी नाक खींचता तो कोई उसके कान। भालू जब ज़ोर से गुर्राया तो सब बच्चे डर गए। कुछ देर बाद भालू ने अपना नकाब उतार दिया। एक लड़का ही भालू बना था। उसके बाद बच्चे एक-एक करके भालू का नकाब पहन कर देखने लगे। इस प्रकार बच्चों को जब एक नया अनुभव मिलता है तो हम सभी को बहुत खुशी मिलती है। कम खर्च में भी नई कल्पनाओं की अनुभूति हो जाती है। इससे सभी ताईयां भी खुश होती हैं। वे दिलो-जान से अपने बच्चों के लिए एक नई दुनिया रचने की कोशिश करती हैं।

कार्यकर्ताओं का मनोबल

हमारे सभी कार्यकर्ता हरेक कार्यक्रम में रुचि लेते हैं। उनके ऊपर कोई भी काम थोपा नहीं जाता है। वे खुद अपनी प्रेरणा से काम करते हैं। एक इज़्ज़त, विश्वास और अपनत्व से भरा माहौल लागों पर जादुई असर डालता है। बालभवन में ऐसी क्या बात है जो बच्चों को अच्छी लगती है? मुझे लगता है कि क्योंकि यहां पर कार्यकर्ताओं को अपना काम करने की स्वतंत्रता है इसलिए वे खुश हैं। शायद इसीलिए वे अपनी सृजना को प्रकट कर पाते हैं और उन्हें कुछ नया रचने की खुशी मिलती है। क्योंकि बालभवन में हमेशा ही कुछ न कुछ नया होता रहता है शायद इस कारण भी बच्चे बालभवन में आने को उत्सुक रहते हैं।

ऐसा माहौल बनाए रखने के लिए कार्यकर्ताओं को कई बातों का ध्यान रखना पड़ता है। पहले तो उन्हें अपने बोलने पर नियंत्रण रखना पड़ता है। एक बार एक लड़का दीवार पर एक घोड़े का चित्र बना रहा था। घोड़े का चित्र था तो सुंदर, परंतु उस पर बैठा सवार बहुत ऊपर था। शायद इस मौके पर ताई हंस कर पूंछ सकती थीं, ''तुम्हारा घुड़सवार हवा में क्यों उड़ रहा है?'' लेकिन यह न कह कर ताई ने बच्चे को थोड़ा पीछे हट कर चित्र देखने को कहा। चित्र देख कर बच्चे ने खुद कहा, ''सवार को थोड़ा नीचे होना चाहिए।'' ताई का हंसमुख होना भी ज़रूरी है, नहीं तो वातावरण बहुत गंभीर हो जाता है। तनावग्रस्त चेहरा देखकर भला किसे खुशी होगी? खुद की स्वयंस्फूर्ति और टीम के अन्य सदस्यों के साथ काम करने की क्षमता भी आवश्यक है।

बच्चों ने एक क्यारी में कुछ दाने बोए। कुछ दिनों में उनमें छोटे-छोटे पौधे निकल आए। एक दिन वहां पर चिड़ियों को डराने के लिए, दो सुंदर पुतले लगे थे। उन्हें देख कर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। यह काम वंदनाताई और शशिताई का था।

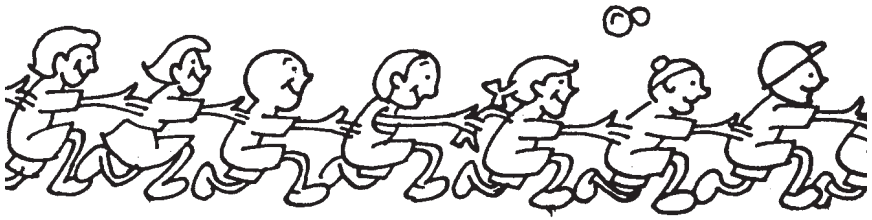

जयाताई ने एक बार वसंतोत्सव मनाया। सबने हरे कपड़े पहने और गले में पीले फूलों की माला डालकर जलूस निकाला। बच्चों ने बालभवन के सभी पेड़ों की महिमा और प्रकृति के गीत गाए। सभी बच्चों ने कम कागज़ खर्च करने की कसम खाई। उन्होंने कम कपड़ों, कम चीज़ों से काम चलाने का निर्णय लिया। उन्हें लगा कि हम लोग अपनी आवश्यकताओं को सीमित करके ही, पेड़ों को बचा पाएंगे। प्रसाद के रूप में बच्चों ने जामुन और करौंदे खाए। इस पूरे कार्यक्रम का आयोजन ताईओं ने स्वयं अपनी ही प्रेरणा से किया।

हर वर्ष बालभवन के जन्मदिन का कार्यक्रम मनाने के लिए एक मंच बनाया जाता है। हर साल स्टेज के लिए एक सुंदर और नए प्रकार का पर्दा बनाया जाता है। इसकी योजना भी ताईयां ही बनाती हैं। वे रात-रात भर जाग कर पर्दा बनाती हैं। इतना मन लगाकर काम करने वालों को देखकर सभी को बेहद आनंद मिलता है।

शायद इसी कारण, एक दिन बड़े बच्चे सभी छोटे बच्चों के लिए अपने हाथ से शरबत बनाते हैं। चौकीदार चाचा को पुरस्कार वितरण समारोह का अध्यक्ष बनाया जाता है। सानिक और श्वेता, दोनों अब बारह वर्ष की हो गई हैं। वो अब बालभवन में छोटी ताई बनकर आना चाहती हैं। वो आती हैं और काम में बहुत मदद भी करती हैं।

ऐसा ताज़गी भरा वातावरण बनाए रखने के लिए ताईयां हमेशा बहुत तत्पर रहती हैं। कचरा-कागज़ बीनने वाली लड़कियों का शिविर हो, रिमांड-होम, आश्रम-शाला, या फिर अंधशाला के बच्चों का शिविर हो, ताईयां बच्चों के साथ हमेशा उसी उत्साह के साथ काम करती हैं।

इस प्रकार के काम से बच्चों का दृष्टिकोण ही बदल जाता है। ***जिज्ञासा कार्नर*** में, बच्चों को अलग-अलग प्रकार की जानकारी देने के लिए, तमाम चीज़ों की प्रदर्शनी लगाई जाती है। इसमें पुराने ज़माने के पीतल के बर्तन भी रखे जाते हैं। पेड़ों में पानी सींचने वाली झारी को देखकर बच्चे कहते हैं कि उन्हें उसी से ही पानी पीना है। तब जिज्ञासा कार्नर एक तरफ रह जाता है और बच्चे अपना सारा समय, झारी से पानी पीने में ही गुज़ार देते हैं। हम चाहते हैं कि बच्चे पुराने ज़माने की चीज़ों को केवल देखें भर नहीं, परंतु वे उनको छुएं और उनके साथ खेल कर देखें।

एक बच्चे ने टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं से बर्तनों के चित्र बनाए। उन चित्रों को देखकर चित्रकला वाली ताई ने बच्चे से पूछा,''क्या बर्तनों को यहां पर ठोका है? अगर हम इस नल को खोलेंगे तो उसका पानी सीधे हमारे मुंह पर आकर पड़ेगा। क्या तुम्हारे घर पर भी इसी प्रकार के बर्तन हैं?'' यह सब कुछ सुनने के बाद पांच साल के चिमण ने उत्तर दिया, ''मेरे घर पर ऐसे बर्तन नहीं हैं ताई। मैंने तो आपके घर के बर्तन बनाए हैं!'' यह सुनकर ताई और चिमण दोनों खिलखिला कर हंस पड़े।

अगर कभी कोई गलत बात हो जाती है तो ताई एक-दूसरे से कहती हैं, ''तुम ऐसा क्यों कह रही हो। क्या यह कोई सरकारी दफ्तर है?'' बालभवन के इसी जादुई वातावरण के कारण ही शायद ताई कम-से-कम छुट्टियां लेती हैं। यहां एक ऐसा माहौल है जिसमें हरेक कोई सीखता है। हमारे चौकीदार की पत्नी सुनीताबाई, बच्चों को छोड़ने आने वाली औरतों के साथ गपशप लगाती थीं। हमने उनसे भी बच्चों के समूहों में जाकर खेलने का आग्रह किया। हमने उनसे ताई के काम को संभाल कर देखने को भी कहा। अब दो-तीन साल बाद सुनीताबाई अच्छी मदद करने लगी हैं और वो अकेले ही एक समूह को संभालती हैं। वो होशियार हैं और उनके व्यवहार में मधुरता है। जहां

तक भानुदास का सवाल है, वो चौकीदार नहीं हैं - वो तो बच्चों के चाचा हैं। बालभवन में बच्चों को किसी प्रकार की असुविधा न हो, उनका कोई अहित न हो, इस बात का भानुदास अच्छा ख्याल रखते हैं।

बच्चों के लिए कोई भी कार्यक्रम महज़ दिखावे के लिए न हो, इस बात का ध्यान रखना पड़ता है। और ऐसा भी न लगे कि कार्यक्रम में ढूंस-ढूंस कर शैक्षिक ज्ञान भरा गया हो। कुछ बातें ऐसी भी होती हैं जिन्हें एक बार अनुभव करके भूल जाना चाहिए। सृजनता का वातावरण बंधनों से मुक्त ही रहना चाहिए। आज मध्यम-वर्ग के बच्चों का जीवन बेहद कत्रिम बन गया है। उन्हें शारीरिक श्रम करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। भोग-विलास की संस्कृति का उन पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह आज एक बहुत बड़ा प्रश्न है। केवल मनोरंजन से ही उनमें सही संस्कार नहीं पड़ेंगे। काम करने से मिलने वाली खुशी, निर्माण का आनंद, कुछ चीज़ों को मना करने की आदत, इन सब चीज़ों से उनका आत्मविश्वास बढ़ेगा। अच्छे संस्कारों के यह सब महत्वपूर्ण अंग हैं। बच्चे हर शाम, बालभवन में दो घंटे के अपने मनपसंद टेलीवीज़न कार्यक्रमों को छोड़ कर आते हैं। रविवार की सुबह वे चार घंटे की सैर पर जाने के लिए बालभवन आते हैं। जो चीज़ें बच्चे खुद बना सकते हैं वो उन्हें बाज़ार से नहीं खरीदते हैं।

आज दुनिया में घट रही तमाम घटनाएं और प्रक्रियाएं बच्चों को नकारती हैं। दूध कहां से आता है? धान कैसे पैदा होता है? इन प्रश्नों से बच्चों का संबंध टूट गया है। बालभवन में हम इन संबंधों को दुबारा जोड़ने का प्रयास करते हैं। इसीलिए इस वर्ष कृषि संबंधित एक प्रकल्प लिया गया। बच्चों और ताई ने मिलकर ज़मीन खोदी। बच्चों को खेती के छोटे-छोटे औज़ार उपलब्ध कराए गए। ज़मीन में पालक, मूली, सेम, मक्का, गेहूं के बीज बोए गए। खाद डाली गई और रोज़ाना निरीक्षण का काम शुरू हुआ।

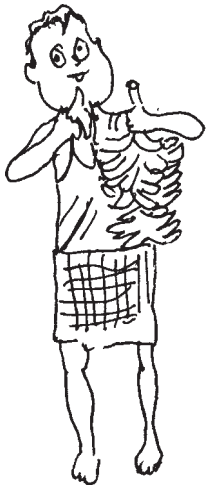

श्रम का फल

बालभवन में सईद नाम का एक बातूनी लड़का था। उसकी टीम के बच्चों ने धनिया बोया। जब धनिया तोड़ने योग्य हुआ तो सईद ने उसकी एक गड्डी मुझे लाकर दी। मैंने कहा, ''हम सब भेलपूरी बनाएंगे और उसमें धनिया डाल कर खाएंगे।'' भेलपूरी में पड़े धनिए की खुशबू ने सबका मन जीत लिया। खरीदी हुई चीज़ों के प्रति हमें इतना लगाव नहीं होता है। शहरों की ***खरीदो और फेंको*** वाली संस्कृति लोगों को श्रम का अहसास होने नहीं देती है। इसीलिए लोग भौतिक चीज़ों की कद्र करना ही भूल से गए हैं। बालभवन के भावी विकास के बारे में लोग पूछते हैं, ''आप यहां पर तैराकी का स्वीमिंग-पूल क्यों नहीं बनाते, कम्पयूटर सेंटर क्यों नहीं खोलते, आदि?'' मुझे लगता है कि दैनिक उपयोग की चीज़ें बच्चों को खुद अपने हाथों से बनानी चाहिए। गांधीजी की, खुद श्रम करने की निर्माण की कल्पना बहुत महत्वपूर्ण है। विनोबा ने एक बार कहा था, ''कसरत से तो केवल मांसपेशियों का ही विकास होता है, परंतु शारीरिक श्रम से शांति, सहनशीलता और काम करने की प्रवृति का विकास होता है।''

आजकल प्रचलित दिखावे वाली शिक्षा से बच्चों के सामान्य ज्ञान और उनकी बुद्धि का विकास अवश्य होगा। परंतु उनके मन में सच्चे मूल्यों का विकास शारीरिक श्रम से ही होगा। आज के शहरी माहौल में यह सब करना एक कठिन कार्य है। हमें जानकारी से भरे, बुद्धिमान प्रश्नों के फटाफट उत्तर देने वाले बच्चे चाहिए, या फिर अंदर से शांत, गहन विचार और अच्छे मूल्यों वाले बच्चे चाहिए?

बालभवन की उपलब्धियां

इसको संभव बनाने के लिए बालभवन पालकों की सही शिक्षा के लिए सदा प्रयत्नशील रहा है। बच्चों को अगर समृद्ध बचपना देना है तो उसके लिए माता-पिता को तैयार करना ज़रूरी है। बच्चों को अलग-अलग और विशेष ज़रूरतों की जानकारी माता-पिता को होनी चाहिए। बच्चों के साथ किस प्रकार का व्यवहार हो, पालकों के क्या कर्तव्य हों, परंपरागत विचारों की गल्तियों को कैसे सुधारा जाए, बच्चों के मनोविज्ञान की समझ, बच्चों की आयु के अनुसार उन्हें काम देना, समय आने पर विशेषज्ञों की सलाह लेना, ऐसी कितनी ही बातें हैं जो सीखने योग्य हैं। एक ओर बच्चों पर ध्यान देना आवश्यक है तो दूसरी ओर उन्हें मुक्त रखना भी ज़रूरी है। बच्चों को अलग-अलग कार्यों में व्यस्त रखना जितना ज़रूरी है, उतना ही उन्हें शांति और फुर्सत उपलब्ध कराना भी है। पेड़ को ही लें। पेड़ कुछ समय अपने पत्तों के विकास पर लगाता है तो कुछ समय अपनी जड़ों को मज़बूत करने पर बिताता है। हम लोग बच्चों की जड़ों - यानि उनके बुनियादी विकास पर ध्यान नहीं देते हैं। अगर पत्तों के विकास पर ही ध्यान केंद्रित होगा तो पेड़ एक दिन जड़ समेत उखड़ कर गिर जाएगा।

भविष्य की आवश्यकताएं

आज ऐसी अनेकों संस्थाओं की आवश्यकता है जो कि बच्चों को उनका बचपन दे सकें। पूरे दिन चलने वाले पालना-घर (क्रेश) खोलना ज़रूरी हैं। पालकों के प्रशिक्षण के लिए नियमित कक्षाएं चलें। बच्चों के लिए सुंदर, सुसज्जित वाचनालय हों। हम इस दृष्टि से तैयारी कर रहे हैं। हमारी सपना है कि बच्चों के लिए एक अच्छा नाट्यग्रह हो, जिसमें लगातार बाल-नाटकों पर प्रयोग होते रहें। स्कूल न जा सकने वाले बच्चों के लिए उनकी समय सुविधा के अनुसार कक्षाएं लगें। उनके लिए व्यवसायिक शिक्षण उपलब्ध कराने की भी आवश्यकता है। कुछ लोग पूछते हैं, ''शाम को जब बच्चे बालभवन से खेलकूद कर वापिस आतें हैं तो वे थक जाते हैं और उन्हें अच्छी भूख लगती है। वे अच्छी तरह खाना खाकर सो जाते हैं। बच्चों को रोज़ नए-नए अनुभव मिलते हैं जिनसे वे निडर बनते हैं। बच्चे बहुत से नए गाने सीख गए हैं। वे अब किसी से बातचीत करने में संकोच नहीं करते हैं। स्कूल में भी ये बच्चे कुछ अलग ही नज़र आते हैं। दूसरी ओर बच्चे कहते हैं कि, ''बालभवन हमें अपना लगता है।'' हमें लगता है कि बालभवन के कार्यक्रमों से बच्चों के जीवन का सूनापन मिट जाता है और उनका सर्वांगीण विकास होता है। वे समृद्ध और खुशहाल बनते हैं। वे लोगों को प्यार करते हैं और अन्य लोग भी उन्हें प्यार करते हैं। अनेक अनुभवों के माध्यमों से, बच्चे अपने परिसर, समाज, अपने शहर, कला, खेल, संस्कृति को ग्रहण करते हैं। ये ज्ञान बचपने में ही मिले यह बहुत महत्वपूर्ण बात है।

हमारे सामने बहुत से काम शेष हैं। पिछले बारह सालों से हम बेहद विषम परिस्थितियों में काम कर रहे हैं। बालभवन की जगह नगरपालिका ने दी है। गरवारे ट्रस्ट पर बालभवन को चलाने की ज़िम्मेदारी है। बालभवन ठीक सारस बाग के सामने है। शहर के बीचोंबीच स्थित होने के कारण यहां कई खतरे हैं। अगर ***रोप-वे*** बनती है तो उससे बच्चों के खेल के मैदान के लिए खतरा पैदा होगा। बच्चे जहां खेलते हैं उधर दुकानें आदि न खुलें इसके लिए बहुत से संवेदनशील नागरिक ***रोप-वे*** प्रकल्प का विरोध करते रहे हैं। यह जगह हमसे वापिस न ली जाए, हम इसकी विनती नगरपालिका से कर रहे हैं। प्रश्न अभी भी मुंह बाए खड़ा है।

बालभवन में कुछ समय बिताकर, प्रशिक्षण लेकर अनेक कार्यकर्ताओं ने जगह-जगह पर, अनेक गांवों और शहरों में नए बालभवन खोले हैं। खुली जगह का प्रश्न सबको परेशान करता है। बच्चों के खेल के मैदानों पर, कोई ठेकेदार कब्ज़ा न करे, अपनी दुकानें न खोल दें, इसके लिए लोगों को लगातार लड़ाई लड़नी पड़ी है। जब तक बालभवन के कार्यक्रम स्कूली शिक्षा का एक अभिन्न हिस्सा नहीं बनते तब तक बालभवन का बना रहना अनिवार्य है। प्रत्येक शहर और गांव में, खुले मैदानों को, बच्चों के खेलने के लिए सुरक्षित रखने की आवश्यकता है। इन्हीं स्थानों पर भावी बालभवन बनेंगे।

बालभवन जहां रोज़ाना एक हज़ार बच्चे खेलने के लिए आते हैं, अगर न भी रहे, तो भी बच्चों के स्वछंद खेलने के लिए, उनके विकास के लिए अन्य स्थान होने ही चाहिए। जहां बच्चों के संस्कार रूपी पत्तों का ही विकास न हो, बल्कि उनकी जड़ें भी मज़बूत हों, यह सुनिश्चित हो। जिससे कि अगर कभी कोई भी आकर यह पूछे, ''मैं अपने बच्चे के विकास के लिए क्या करूं?'' तो हम कम-से-कम उसका सही मार्गदर्शन कर सकें।

❐❐❐